REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 10 | ISSUE - 3 | DECEMBER - 2020

प्राचीन भारत में जनसंख्या का स्वरूप और उसके निर्धारक कारक : एक ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ. विजय कुमार
विभाग प्रभारी एवं असि0 प्रोफेसर – प्राचीन इतिहास विभाग,
इन्द्रासन सिंह स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी राजकीय महाविद्यालय, पचवस, बस्ती।

शोध सारांश –

प्राचीन भारत में एक सुव्यवस्थित प्रशासनिक तन्त्र विद्यमान था जिसमें राज्य प्रशासन विभिन्न घटकों में विभाजित था। राजा, मन्त्री, अमात्य इत्यादि की अलग–अलग भूमिकाएं निर्धारित थी, किन्तु इन सभी में समन्वय था। प्राचीन प्रशासनिक व्यवस्था स्तरीकत थी और उच्च से निम्न स्तर तक (राजधानी से ग्राम) तथा केन्द्र से सुदूर क्षेत्र तक व्यापक रूप से व्याप्त थी। राज्य रूपी संस्था के प्रशासनिक तन्त्र जिसके लिए कार्यशील था और जिसके ऊपर सक्रिय था वही जनसंख्या उसी (राज्य) की एक अभिन्न अंग, तत्व अथवा अवयव थी। यद्यपि जनसंख्या अपने सामाजिक नियमों एवं नैतिक मूल्यों से बंधी थी परन्तु मानव की चंचल प्रवृत्ति पर अंकुश लगाकर सृजनात्मकता की ओर उन्मुख करने में पूर्ण सक्षम न थी। इसी कारण प्राचीन हिन्दू ग्रन्थों में मत्स्यन्याय की चर्चा व्यापक रूप से देखने को मिलती है। अराजकता की स्थिति से बचने के लिए राज्य अथवा दण्डधारी राजा की व्यवस्था प्राचीन समय में हुई थी। राज्य ने अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रशासनिक तन्त्र की स्थापना व उसके विकास का कार्य किया। स्पष्ट है कि प्रशासनिक तन्त्र इसी जनसंख्या के कल्याण के लिए निर्मित और विकसित व्यवस्था थी। प्रस्तुत अध्याय में यह दर्शाने का प्रयास किया गया है कि राजनैतिक संस्था राज्य की प्रजा (जनसंख्या) का प्रशासनिक व्यवस्था में योग की दृष्टि से सामाजिक संगठन किस प्रकार का रहा था। सामाजिक दृष्टि से जनसंख्या विभिन्न समुदायों, सम्प्रदायों, धर्मो, वर्गों इत्यादि में विभक्त दिखती है। वास्तविक जगत में इसे एकमात्र जनसंख्या के रूप में देखा जाता है । यही जनसंख्या प्रजा का स्वरूप धारण कर लेती है अर्थात राज्य प्रशासन का ऐसा पक्ष जिसके कल्याण को शासन पक्ष द्वारा सम्यक दृष्टि से देखना होता है। प्राचीन समय में जनसंख्या विभिन्न प्रकार से विभक्त थी। यह जनसंख्या वर्णाश्रम धर्म और अन्य सामाजिक व्यवहारों अन्य सम्प्रदायों द्वारा प्रदत्त भिन्न व्यवस्थओं, आर्थिक जगत की श्रेणियों नियमों इत्यादि के नियामकों में संगठित थी। जनसंख्या को भिन्न–भिन्न दृष्टिकोण से देखने पर इसके विभिन्न स्तर दृष्टिगोचर होते हैं। प्राचीन समाज के घटकों (अवयवों) का योग जो कि राजैतिक पटल पर प्रजा (जनसख्या) के रूप में मान्यता प्राप्त करता है राज्य से एक और समीकरण बनाता है। इस समीकरण में एक ओर राज्य पक्ष और दूसरी ओर प्रजा पक्ष होता है। दोनों एक दूसरे के अस्तित्व के लिए आवश्यक है। अतएव दोनों पक्षों से एक दूसरे के प्रति सन्तुलित एवं नियन्त्रित नीति अपनाने की आशा की जाती है। जनसंख्या के प्रति राज्य व्यवहार की नीति अपनाने की अपेक्षा की जाती है। जनसंख्या के प्रति राज्य व्यवहार की नीति का अध्ययन करने के करने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि जनसंख्या (प्रजा) के स्वभाव व प्रकृति का पूर्ण ज्ञान हो।

मुख्य शब्द – पुरोहित, राजन्य, विश् , शूद्र , परिवाहक, आध्यात्मिक मार्गदर्शक.

प्राचीन भारत में जनसंख्या का स्वरूप और उसके निर्धारक कारक अत्यंत व्यापक थें। जनसंख्या के अवयवों के ज्ञानार्जन के उपरान्त ही यह निष्कर्ष निकालना सम्भव हो सकता है कि राजशासन का प्रजा के प्रति व्यवहार निष्पक्ष, भेदभाव, अवहेलना, दमनकारी अथवा कल्याणकारी में से क्या रहा है और किन स्थितियों अथवा परिस्थितियों ने राज्य को उसके व्यवहार निर्धारण में योग किया। राज्य की दृष्टि में सामाजिक संगठनों में बंधी जनसंख्या मात्र एक प्रजा होती है। राज्य एक ओर है तो प्रजा उसके समक्ष एक पक्ष है। राज्य इस प्रजा पक्ष से समरूप या हितकारी व्यवहार कर सकता है और दमनकारी, शोषणकारी या पक्षपाती व्यवहार भी। पक्षपाती व्यवहार से तात्पर्य है कि राज्य द्वारा किसी वर्ग विशेष का पक्ष लेना जिसका कारण हो सकता है–उच्च या निम्न सामाजिक या आर्थिक स्थिति या फिर धर्म सम्प्रदाय के उच्च अथवा निम्न वर्ग का पक्ष लेना इत्यादि। पक्षपात और कल्याण में यही अन्तर है कि कल्याण में नैतिक व्यवहारएक आवश्यक तत्व है, जबकि पक्षपात में किसी वर्ग विशेष को लाभान्वित करने की नीति का अनुपालन किया जाता है। प्रजा पक्ष के स्वभाव व संगठन इन नीतियों के उत्तरदायी कारक होते है। अतएव प्राचीन भारतीय प्रजा पक्ष के स्वभाव व संगठन को समझने के लिए प्रस्तुत आलेख महत्वपूर्ण है। वर्ण व्यवस्था प्राचीन भारतीय संस्कृति की एक अमूल्य संस्था है। अबे डुबायस महोदय के अनुसार जब सम्पूर्ण यूरोप बर्बरता की गोद में पड़ा था उस समय भारतीय विज्ञान, कला और सभ्यता की उन्नति का एक मात्र कारण था उसकी वर्णव्यवस्था। सिडनी लों ने लिखा है कि युग युग के प्राकृतिक तथा राजनीतिक आघातों को सहकर भी भारतीय समाज ने अपनी मौलिक एकता और स्थिरता बनाए रक्खी क्योंकि यहाँ वर्णव्यवस्था जैसी संस्था विद्यमान थी।

ऋग्वेद में पुरोहित, राजन्य, विश् तथा शूद्र शब्दों का अनेक स्थलों पर प्रयोग मिलता है परन्तु ऋग्वेद में बाद में जोड़ने गये दसवें मण्डल में पुरुष सूक्त के एक लोक में वर्णव्यवस्था के चारों वर्णों की उत्पत्ति का लाक्षणिक वर्णन किया गया है। इस वर्णन में एक विराट पुरुष की कल्पना की गई है तथा यह कहा गया है कि जब देवताओं ने विराट पुरुष की बलि दी तो उसके मुख भाग से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, उरु (जंघा) माग से वैश्य तथा पैरों से शुद्र उत्पन्न हुए। यह वर्ण व्यवस्था का प्राचीनतम् उल्लेख है। इन चारों वर्णों के गुण–धर्म से सम्बन्धित अंगो के गुणों की तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह व्यवस्था कर्म के निर्धारण की ओर संकेत करती है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल से पूर्ववर्ती आठवें मण्डल में तीन वर्णो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का उल्लेख मिलने से यह बात पूर्णतयः स्पष्ट हो जाती है कि ऋग्वेदिक काल में चातुवर्ण स्थिति विद्यमान थी। परन्तु यह वर्ण जन्मजात न होकर व्यवसाय पर आधारित होते थे तथा व्यवसाय–परिवर्तन सम्भव था। ऋग्वेद के एक लोक में एक ऋषि कहता है नै कवि हूँ। मेरे पिता वैध हैं तथा मेरी माता अन्न पीसने वाली हैं। साधन भिन्न है परन्तु सभी धन की कामना करते हैं। अंगों से वर्णों की उत्पत्ति का उल्लेख यजुर्वेद में भी मिलता है (यजुर्वेद 31–10–1)। तैत्तरीय संहिता में चतुर्वर्ण के सम्बन्ध में उल्लेख मिलता है कि मुख से उत्पन्न होने के कारण ब्राह्मण श्रेष्ठ है, भुजाओं से उत्पन्न होने के कारण क्षत्रिय शक्तिशाली (बलशाली) है, उदर (पेट) से उत्पन्न होने के कारण वैश्य उपभोग करने वाले हैं तथा पैर से उत्पन्न होने के कारण परिवाहक (सेवक) हैं। वास्तव में ऐसा श्रम विभाजन न तो वर्ण व्यवस्था का उददेश्य था और न माध्यम। इसका माध्यम है गुण और कर्म तथा उददेश्य है मोक्ष की प्राप्ति से जन–कल्याण। श्री कृष्ण ने गीता में स्पष्ट रूप में कहा है कि चारों की सृष्टि मैंने ही गुण और कर्म के आधार पर की है।

मनु ने ऋग्वेद के पुरुष सूक्त के ही सिद्धान्त की पुनरावृत्ति करते हुए बताया है कि इस व्यवस्था का कारण सम्पूर्ण प्राणिमात्र का कल्याण है। इसीलिए उन्होंने अलग–अलग कर्म का सम्बन्ध एक–एक वर्ण से जोड़ा है। मनु समाज का चतुर्वर्ण ही मानते है। याज्ञवल्क्य और बौद्धायन ने भी यही मत व्यक्त किया है। बाल्मीकि भी विराट पुरुष से वर्णों की जापति की पुष्टि करते हैं साथ ही इन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि कर्मो के अनुसार है। वर्णी में परिवर्तन होता है यथा–विश्वामित्र पहले राजर्षि (क्षत्रिय) थे पर कालान्तर में तपस्या कर्म के प्रभाव से ब्रह्मर्षि (ब्राह्मण) हो गये। इसके अतिरिक्त नलकूबर भी धर्मानुष्ठान के कारण ब्राह्मण तथा पराक्रम के कारण क्षत्रिय कहा गया है। जाबालि ने राम से कहा है कि आचार ही व्यक्ति का उत्तम और कुलीन कुलोत्पन्न होता है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन भारतीय समाज का चार वर्णों में विभाजन श्गुण और कर्म के आधार पर किया गया था जिसके पीछे एक मात्र उद्देश्य जनकल्याण ही था तथा इसी विभाजन के आधार प्राचीन राजशास्त्रीयों ने एक सुदृढ़ राज्य की नीव रखने का सफल प्रयास किया। राज्य के निर्माण तथा उसके सुचारु रूप संचालन में इन चारों वर्णों का ही विशिष्ट योगदान रहा जिसके कारण ही प्राचीन बरतीय राज्य

अपने को एक जनकल्याणकारी संस्था के रूप में स्थापित करने में सफल हो सके थे। राज्य तथा प्रशासन में इन वर्णों के विशिष्ट योगदान अग्रलिखित हैं।

ऋग्वेद में ब्राह्मण शब्द सामान्यतः प्रार्थना के समानार्थी के रूप में है परन्तु अनेक स्थलों पर इसका अर्थ सन्त, पुजारी या पुरोहित के रूप में भी बोलता है। वैदिक समाज में ब्राह्मण वर्ग क्षत्रियों की ही भांति प्रभावी वर्ग था। इयोदक काल में इन दोनों के संबध अत्यन्त मधुर एवं सहयोगात्मक रहे। राजसूय यह को पूर्ण करने में ब्राह्मण वर्ग ही सर्वथा सक्रिय भूमिका अदा करता था इस यज्ञ को पूर्ण किये बिना राजपद ग्रहण नहीं हो सकता था अतः यह यज्ञ क्षत्रियों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण था। तैत्तिरीय संहिता के अनुसार प्रारम्भ में ब्राह्मण और क्षत्रिय एक ही वर्ग के थे परन्तु कालान्तर में ये भिन्न हो गये। पे। ब्राह्मण को राजा का पद ग्रहण करने का अधिकार प्राप्त था तथा ऐसी परिस्थिति में वह ब्राह्मण राजा, अन्य क्षत्रीय राजाओं की तुलना में उच्च समझा जाता था। तैत्तिरीय संहिता में ब्राह्मणों को देवता की कोटि में रखा गया है तथा उन्हें पृथ्वी का देवता माना जाता था। ऐसी धारणा थी कि ब्राह्मणों के सहयोग के बिना नही किया हुआ यज्ञ देवों को ग्राह्य नहीं होता था। इससे स्पष्ट है कि ब्राह्मण ही राजा को राजपद प्रदान करता था। गौतम के अनुसार पृथ्वी पर ब्राह्मण ही क्षत्रीयों की सहायता से राज्य का कल्याण कर सकते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार ब्राह्मणों के सहयोग से किया गया शासन समुन्नतशील होता है और राज्य योद्धाओं से भरपूर होता है।

ब्राह्मण वर्ग राजा के निर्वाचन में भी सक्रिय भूमिका निभाता था। यथा–राजा दशरथ के देहान्त के उपरान्त मार्कण्डेय एवं वामदेव जैसे मुनियों ने अमात्यों के साथ कुल–पुरोहित इष्ठ के समक्ष यह प्रस्ताव किया कि राम व लक्ष्मण भरत व शत्रुध्न केकय देश में है। इक्ष्वाकु कुल के किसी वंशज को राजा चुनना चाहिये। रामायण में मुनियों और झनायो को राज–कर्ता कहा गया। राजतरंगिणी में यशस्कर नामक ऐसे राजा का वर्णन मिलता है जो पहले एक दरिद्र व्यक्ति था तथा कालान्तर में इसे ब्राह्मणों ने राजा बनाया। वशिष्ठ का कथन है कि यदि एक ब्राह्मण की नियुक्ति राजा पुरोहित पद नियुक्ति करता है तो राज्य में समृद्धि आती है। राजा से आशा की जाती थी कि वह अपने ब्राह्मण पुजारी के निर्देशों का अनुपालन करेगा। राज्य प्रशासन में ब्राह्मण वर्ग का योगदान तथा उनकी महत्ता का पता राज्य के पुरोहित पद को प्राप्त अधिकारों से पता चलता है। जातक ग्रन्थों अनेक ऐसे साक्ष्य मिलते हैं जिनमें यह स्पष्ट होता है कि पुरोहित राजा का आध्यात्मिक सांसारिक सलाहकार था। वह न्यायप्रशासन के कार्यों में भाग लेता था प्राचीन काल तीन वेदों में पारंगत ब्राह्मणों से राजा धर्म स्मृतियों को सुनता था। कभी–कभी राजा पुरोहितों को राजकुमारों के गुरू के रूप में नियुक्त भी करते थे। राजकुमारों द्वारा निजी तौर पर पुजारी रखने से उन्हें मिलने वाले लाभों का अथर्ववेद में वर्णन किया गया है। पुरोहित राजकुमारों को बरे कृत्यों से रोक सकता था तथा इस प्रकार पुरोहित या मन्त्रीगण राजकुमारों के लिए अच्छे मार्गदर्शक साबित हो सकते थे। स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय जनीति में पुराहित एक आवश्यक अंग था।

शुक्रनीतिसार में पुरोहित को राजा व राष्ट्र का रक्षक बताया गया है। पुरोहित राजा का यह अधिकारी है जो राजा के धार्मिक, नैतिक और राजनैतिक कल्याण का ध्यान रखता है और युद्ध एवं शान्ति में राजा के साथ रहता है। राजा की समृद्धि उसे एक मात्र योद्धा व प्रभु बनाने के लिए प्रार्थना करता है जिससे वह सभी शत्रुओं का संहार कर प्रमुख स्थान प्राप्त कर सके। पुरोहित जनता से कहता है कि ग्राम, कस्बे, गायों और घोड़ो का एक अशं राजा को प्रदान करे। शेण्डे ने आगे लिखा है कि युद्ध क्षेत्र में युद्ध जीतने में जितना योग वीरों का होता है उतना ही पुरोहित के जादू टोने अथवा जादू भरे कार्यों का है वह युद्ध ओर शान्ति दोनों में ही राजा का अनिवार्य सहयोगी है। इसके अतिरिक्त वह राजा का प्रचार अधिकारी भी है और जनता के मनोबल को बहुत ऊँचे स्तर पर रखता है। कालान्तर में पुरोहित की महत्ता में कमी आ गयी। वह मंत्रीपरिषद से हट गया। पूर्व मध्यकाल मे चेदि सेन तथा गहड़वाल वंशीय राजाओं ने अपने मंत्रिमण्डल पुरोहित को स्थान नहीं दिया। इस काल में पुरोहित को प्रशासनिक कार्यों का सत्तरदायित्व सौंपने की बजाय धार्मिक तथा राजकीय परिवार के आध्यात्मिक मार्गदर्शक का उत्तरदायित्व सौंपा गया। इस प्रकार इसने अपना मंत्रिपद तो खो दिया परन्तु इसका सम्मान एक मंत्री से भी अधिक किया जाता था। यथा– प्रहयलाद श्रमण, गहड़वाल नरेश जयचन्द्र (1170–1194 ई०) का महापुरोहित तथा महाराजगुरू दोनों ही पद पर था। पुरोहित कभी कभी राजकीय प्रशस्तियों को लिखने का कार्य भी करते थे, दया– पालवीय नरेश महेन्द्रपाल (महीपाल) द्वितीय (1070–1075ई0) के पुरोहित त्रिविक्रमनाथ ने प्रतापगढ़ अभिलेख लिखा। पुरोहित के कार्यों को धर्माध्यक्ष (या धर्माधिकरणिक) नामक

पदाधिकारी करने लगे थे। मत्स्यपुराण में धर्माधिकरणिक के गुर्णा का वर्णन किया है। बल्लालसेन (1158–1179ई0) नामक सेनवंशी शासक के नैहाटी दानपत्र में पुरोहित एवं महाधर्माध्यक्ष दोनों का नाम है।

ऋग्वेद में क्षत्र शब्द पचास बार आया है तथा क्षत्रिय शब्द का नौ बार लेख हुआ है। सामान्यतः यह शब्द शक्ति की सर्वोच्चता को प्रदर्शित करता है। मागीनी के अनुसार क्षत्रिय शब्द क्षत्र से ही उत्पन्न हुआ है। ऐतरेय ब्राह्मण में क्षत्रिय हो ही राष्ट्र कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण तथा ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थों में क्षत्रिय एवं साजन्य को एक ही माना गया है। अथर्ववेद में क्षत्रिय को राजा की संज्ञा प्रदान की गई है। इन्हें राजसूय, अश्वमेघ, वाजपेय तथा सूत्रामनी 12 यज्ञों को करने का अधिकार प्राप्त था। अथर्ववेद के अनुसार राजा को चाहिए कि वह प्रजा के हितों का अधिकतम ध्यान रखे अन्यथा उसे अपने राष्ट्र व क्षत्र की सुरक्षा करना दुष्कर हो जायेगा। मनुस्मृति के अनुसार क्षत्रियों का कर्तव्य है– धर्म की रक्षा करना, दान देना, अध्ययन करना, विषयों में न फसना इत्यादि। विराट पूर्व में कहा गया है कि युद्ध क्षेत्र से मरना क्षत्रियों के लिए श्रेष्ठ है। रामायण में क्षत्रियों का प्रथम धर्म प्रजा पालन बताया गया है जबकि गौतम धर्मसूत्र में लिखा है कि सभी प्राणियों की रक्षा करना इनका मूल उत्तरवैदिककाल में ऋग्वैदिककालीन राजन्यों को ही क्षत्रिय कहा जाने लगा था तथा इस वर्ग में राजा, शासक वर्ग, राजा के सम्बन्धों और समाज के सम्मानित वर्ग होते थे। इन सभी का मुख्य कार्य, राज्य में शान्ति स्थापित कर राज्य के कार्यों का सुचारू रूप से संचालन करना तथा आपात स्थिति में राज्य के लिए युद्ध करना था। युद्ध और प्रशासन दोनों ही क्षत्रियों के मुख्य व्यवसाय (कर्तव्य) थे, इसी कारणवश क्षत्रिय विद्यार्थियों को सर्वप्रथम इन्हीं विषयों की शिक्षा दी जाती थी। धनुर्ववेद तथा क्षत्रियवेद, क्षत्रिय विद्यार्थीयों के अध्ययन के मुख्य क्षेत्र थे।

तैत्तरिय संहिता में कहा गया है कि क्षत्रिय और शक्ति का जन्म साथ–साथ हुआ है तथा ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार शक्ति (बल) क्षत्रिय सूचक चिन्ह है। एक क्षत्रिय से अपेक्षा की जाती थी कि वह बहादुर हो, युद्ध में निपुण हो, लक्ष्य को भेदने की क्षमता रखता हो तथा एक शक्तिशाली योद्धा हो। तलवार और धनुष धारण करने के कारण तैत्तरीय ब्राह्मण क्षत्रियों को बाहुबली की सधा प्रदान करता है। शतपथ बाबाणश के अनुसार युद्ध ही राजन्य की शक्ति होती है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार राजपद के लिए केवल क्षत्रिय ही योग्य है। अथर्ववेद में वशिष्ठ (एक ब्राह्मण), इन्द्र (एक क्षत्रिय शासक) से उसके सरंक्षण की प्रार्थना करते हैं। इसके अतिरिक्त शतपथ ब्राह्मण में स्पष्ट कहा गया है कि पृथ्वी का सर्वप्रमुख संरक्षक क्षत्रिय ही होता है। ऐतरेय ब्राह्मण कहता है कि शासक के रूप में एक इत्रिय, सभी चीजों का ईश्वर, ब्राह्मणों का सरंक्षक तथा धर्म की रक्षा करने वाला होता है। पाणिनी ने राजन्य् को राजा की सन्तति (वंशज) सिद्ध किया है। इनके अनुसार साजन्य एक ऐसा राजनीतिक शब्द है जिसका सम्बन्ध गण, संघ तथा ग्रामणी इत्यादि से था। वासुदेवशरण अग्रवाल ने भी पाणिनी का समर्थन करते हुए लिखा है कि गण के परिवारों या कुलों के क्षत्रिय सदस्य को राजन्य् के रूप में जाना जाता था। प्रजा की रक्षा करना, वेद पढ़ना, दान देना, यज्ञा करना क्षत्रीयों का प्रधान कर्म था। रणकौशल उसके लिए अनिवार्य था। धर्मसूत्रो के अनुसार क्षत्रियों का सर्वप्रथम कर्तव्य युद्ध एवं प्रशासन से सम्बद्ध है। अपने हथियारों के बल से लोगों की रक्षा करना क्षत्रियों का एक विशिष्ट कर्तव्य है। इन्ही कारणों से प्राचीन भारत में क्षत्रियों के लिए सेना एवं प्रशासनिक पदों के लिए व्यापक उपलब्धता थी। प्राचीन भारत में शासक (राजा) प्रायः क्षत्रिय वर्ग का ही होता था।

प्राचीन ग्रन्थों में ब्राह्मणों को केवल सर्वोच्च ही कहा गया है बल्कि उन्हें देवताओं के समान बताते हुए, मानव देवता कहा गया है। वशिष्ठ के अनुसार ब्राह्मण दूसरे वर्णों के कार्यों की व्याख्या करता थे तथा उनके निर्देशों के आधार पर समाज के सभी लोग सदाचार का पालन करते हए अपने दैनिक कार्यों में संलग्न रहते थे तथा राजा भी ब्राह्मणों द्वारा निर्मित सामाजिक नियमों तथा सारी निर्देशों को मानता था। आपस्तम्ब का कथन है कि दस वर्षीय ब्राह्मण को भी सौ वर्षीय क्षत्रिय अपने पिता की भांति सम्मान दे। स्पष्ट है कि कालान्तर में ब्राह्मण वर्ग को शेष तीनों वर्गो की अपेक्षा कहीं अधिक अधिकार एवं सम्मान मिलने लगा परन्तु ब्राह्मणों की श्रेष्ठता को शीघ्र ही (600 बी. सी. में) क्षत्रियों के विरोध के कारण ठेस पहुँची। ब्राह्मण ग्रन्थ जहाँ ब्राह्मणों को सभी में सर्वोच्च मानते हैं वहीं दूसरी ओर बौद्ध ग्रन्थों का कथन है कि राजा (क्षत्रिय) सभी व्यक्तियों से श्रेष्ठ होता है। ब्राह्मण एवं क्षत्रिय वर्गों के मध्य संघर्ष की स्थिति केंवल साहित्य तक ही सीमित रही। ब्राह्मण ग्रन्थों में ब्राह्मणों को तथा बौद्ध ग्रन्थों में क्षत्रियों को श्रेष्ठ बताया गया है। इनके मध्य श्रेष्ठता के लिए संघर्ष होने का किसी भी अन्य स्रोत से कोई भी सूचना नहीं प्राप्त होती है।

अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने लिखा है कि राज्य शक्ति का अजेय बना रहना दैनिक शक्ति तथा ब्राह्मणों, जो शास्त्रों के अनुसार उचित सलाह देने इत्यादि का कार्य करता है। मनु ने लिखा है कि क्षत्रिय, ब्राह्मणों के बिना समृद्ध नहीं बन सकते है और ब्राह्मण, क्षत्रियों के बिना। अतः एक दूसरे की समृद्धि के लिए दोनों को संयुक्त रहना चाहिए। राज्य एवं समाज के पावन नियमों का, मनु ने ब्राह्मणों को जड़ तथा क्षत्रियों को चोटी स्वीकार किया है। चारों वर्णों द्वारा अपने–अपने व्यवसायों और कर्तव्यों के साथ–साथ धार्मिक व्यवस्था को भी बनाये रखना आवश्यक था। अर्थशास्त्र में उल्लेख मिलता है कि राजा की पूर्ण सफलता तीन बातों पर निर्भर करती है–ब्राह्मणों का समर्थन, मन्त्रिमण्डल की अच्छी सलाह और शास्त्रों के अनुसार कार्यक्रम। यद्यपि सम्राट अशोक ने राजनीतिक विषयों में पुराहितों के योग को शून्य किया। परन्तु उसने देवानांप्रिय की उपाधि ग्रहण की, जिससे स्पष्ट होता है कि उसने पुरोहित शक्ति का समर्थन प्राप्त करने की चेष्ठा की। किन्तु अशोक के कार्यों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि इस उपाधि को ग्रहण करने के पीछे उसकी एकमात्र इच्छा यह थी कि वह राजा के दैवी शक्ति से संबध पर बल दे सके। इससे जहाँ एक ओर पुराहितों की उपेक्षा हो गयी वहीं अशोक को धर्म प्रचार में सहायता मिली और उसने दावा किया कि धम्म नीति के प्रसार के उपरान्त जम्बूदीप देवताओं के योग्य हो गया। अर्थशास्त्र में मन्त्रियों के ईमानदारी और बुद्धि के गुर्णा के साथ–साथ जन्म को भी विशेष महत्व दिया गया है। मेगस्थनीज ने लिखा है कि राजा के सलाहकार एक विशेष जाति से चुने जाते हैं और इसने इसे सातवीं मुख्यमन्त्री और पुरोहित, मन्त्रियों की राजा के प्रति कई प्रकार से वफादारी जाँचने में राजा की सहायता करते थे। स्पष्ट है कि जनसंख्या का विभिन्न प्रकार का घटक अपनी–अपनी भूमिका का निर्वाहन करता था।

सन्र्दभ ग्रन्थ सूची :–

1. अबे डुबायस, हिन्दू लॉ, मेनरस एण्ड कस्टम्स।
2. सिडनीलों, विजन ऑफ इण्डियन।
3. डा. शिवस्वरूप सहाय, हिन्दु राज्य और समाज।
4. प्रभु, हिन्दू सोशल आर्गनाइजेशन।
5. एन० एन० घोष, द आंरिजिन एण्ड डिवलेपमेन्ट ऑफ कास्ट इन इण्डिया।
6. बी. सी. लॉ, इण्डिया एज डिस्क्राइब्ड इन दा अरली टेक्ट्स ऑफ बुद्धिज्म एण्ड जेनिज्म, लन्दन, 1941.
7. एन. के. दत्त, ऑरिजन एण्ड ग्रोथ ऑफ कास्ट इन इण्डिया, भाग 1. कलकत्ता, 1931.
8. नीलकंठ शास्त्री, (संपाकद) दि एज ऑफ दि नंदास एण्ड मौयार्ज।
9. आर. एल. मेहता, प्री बुद्धिस्ट इण्डिया।
10. जे. सी. जैन, लाइफ इन ऐन्शेन्ट इण्डिया एज डिस्क्राइब्ड इन दा जैन कैनोनस, मुम्बई
11. सत्यकेतु विद्यालंकार, प्राचीन भारत की संस्थाएं और राजनीतिक विचार।
12. डा. परमात्मा शरण, प्राचीन भारत की राजनीतिक विचार एवं संस्थायें।
13. डा. जे. शेण्डे, द रीलिजन एण्ड द फिलॉसफी ऑफ द अथर्ववेद।
14. ए. एस. अल्तेकर, स्टेट एण्ड गवर्नमेण्ट इन ऐन्शेन्ट इंडिया।
15. ए.एस. अल्तेकर–एजुकेशन इन ऐशेण्ट इण्डिया, छठा संस्करण, बनारस, 1965.
16.आर. के. मुखर्जी ऐन्शेण्ट इण्डियन ऐजुकेशन, पृष्ठ 152–53, द्वितीय संस्करण, लन्दन।
17. एन. के. दत्त, ऑरिजन एण्ड ग्रोथ ऑफ कास्ट इन इंण्डिया, खण्ड–1, कलकत्ता 1931.
18. वी. एम. आप्टे, सोशल एण्ड रिलीजियस लाइफ इन द गृहसूत्र, मुम्बई 1954
19. रिजेडेबिड्स, द स्केर्यड बुक आफॅ व बुद्धिष्ट, अध्याय 28 (मिलिहन्दपन्हौ प्रश्न),भाग–2.
20. फिक, अनुवादक मित्र, सोशल ऑग्रेनाईजेशन इन नार्थ ईष्ट इण्डिया इन बुद्ध टाइम्स,. कलकत्ता. 1920.
21. पदमा, बी. उदगांवकर, द पॉलिटिकल इन्सटीट्यूशन्स एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन (750 से 1200 शती ईस्वी)।